अक्तूबर - नवम्बर 2015
द्विमासिक पत्रिका
सत्यापित क्र. HAR HIN 04496/07/1/2007-T.C.

वर्ष-9 अंक-4
20 नवम्बर 2015

सेवा दर्शन से प्रभु पूजा

परामर्शदाता : प्रान्त सेवाप्रमुख : श्री सतीशचन्द्र सिंधवानी, रोहतक। मो. 094667-25772

स्वामी : सेवा भारती (पंजी.), हरियाणा। अध्यक्ष : प्रो. डॉ. बुद्ध सिंह सी-7, अशोक विहार, फेज़ 2, गुड़गांव-122001 & 099718-02274

सम्पादक एवं प्रकाशक : ओम प्रकाश अत्रेजा
ई-230, अर्जुन गेट, करनाल-132001
& 0184-2255852, 2255874

पत्रिका प्रबन्धक :
ओम प्रकाश वर्मा, एम.ए.बी.एड.
1414/13, अर्बन एस्टेट, करनाल-132001

सेवा दर्शन से प्रभु पूजा का सम्पादन, लेखकों के अन्य संघ कार्य से संबंधित हैं

इस लेख को पढ़ते समय जहाँ 'साधारण स्वयंसेवक' वहाँ सेवा भारती के कार्यकर्ता पढ़ें।

मैं साधारण स्वयंसेवक —प.पू. श्रीगुरूजी

स्वयंसेवकों के साथ बातचीत में किसी से परिचय पूछा तो कतिपय स्वयंसेवक 'मैं एक साधारण स्वयंसेवक हूँ' अथवा 'सामान्य स्वयंसेवक हूँ, ऐसा बताते हैं। अनेक बार ऐसा कहने का आशय होता है कि, 'संघकार्य का मुझ पर कोई दायित्व नहीं है।' यदि कोई दायित्व है तो ऐसा आचरण करना कि जिससे अपने गटनायक, गणशिक्षक आदि को अपने पीछे विशेष प्रयास करने पड़ें अर्थात् संघ-शाखा में अनुपस्थित रहना, जिससे कि वे घर आयें, पुकारें और इस प्रकार अपने गटनायक अथवा गणशिक्षक काम में सतर्क रहें, मानो यही अपना दायित्व है, ऐसा स्वर उसमें से निकलता है।

प्रतिष्ठा की बात : अब यह जो 'साधारण स्वयंसेवक' शब्द-प्रयोग है, वह तो अच्छा है, क्योंकि हम सभी साधारण स्वयंसेवक हैं। असाधारण किसमें है ? अब लोग कहते हैं कि मेरा संघ में प्रमुख स्थान है। अंग्रेज़ी में चीफ़ ऑफ़ आर.एस.एस (Chief of R.S.S.) कहते हैं, तो मुझमें असाधारणता या असामान्यता कौन सी है? थोड़ी दाढ़ी बढ़ी है, आप भी नित्य दाढ़ी न बनायें तो आपकी भी बढ़ेगी, उसमें असामान्यता क्या है? यहाँ पर भी कुछ ऐसे लोग हैं जो उस दिशा में प्रयत्नशील हैं। इसलिए उसमें कोई विशेषता नहीं है। मुझे बहुत पुराना स्मरण है- अपने संघ का कार्य जिन्होंने आरम्भ किया उनके बारे में, उन्होंने अपने सहयोगी कार्यकर्ता बन्धुओं से आग्रहपूर्वक कहा-"यह जो सरसंघचालक का काम है, उसे करने के लिए किसी अन्य को तैयार करो जिससे मैं उसे यह दायित्व सौंपकर एक 'साधारण स्वयंसेवक' के रूप में खुल कर काम कर सकूँगा। साधारण स्वयंसवेक कैसा हो, इस सम्बन्ध में मेरी कुछ धारणा, इच्छा

अपेक्षा है, तदनुसार स्वयं चलकर अपने साथ-साथ काम करने वालों के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकेगा।" अर्थात् उनकी कल्पना 'साधारण स्वयंसेवक' बनकर रहने की थी। परिस्थिति ने उन्हें वैसे रहने नहीं दिया, अतः संघ के प्रमुख के नाते उन्हें काम करना पड़ा। उन्होंने ऐसी इच्छा मन में क्यों की? ऐसी अपेक्षा क्यों रखी? एकमात्र कारण है कि अपने संगठन में 'साधारण स्वयंसेवक' होना अत्यन्त प्रतिष्ठा की बात है। अत्यधिक प्रतिष्ठा की! समय-समय पर अपने देश में, समाज में घूमते हुए यदि कोई मुझे पूछे कि 'तुम्हारे जीवन में सर्वाधिक गर्व करने योग्य कौन-सी बात तुम्हें लगती है ?' तो मैं कहना चाहूँगा कि 'मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का स्वयंसेवक हूँ।' इससे अधिक गर्व करने योग्य कोई बात नहीं है। हाँ, कुछ पढ़ लिया, कुछ उपाधियाँ मिलीं, कुछ लोगों को पढ़ाया भी, कहीं-कहीं जाकर भाषण करता हूँ, कुछ लोग आकर माला पहनाते हैं, कुछ साष्टांग दण्डवत् प्रणाम भी करते हैं। मेरे इस रूप और वेश के कारण मुझे अधिक लोग नमस्कार करते हैं, तो उसमें भी मुझे गौरव नहीं अनुभव होता। बड़े-बड़े लोग मिलते हैं, बाहर के भी मिलते हैं, धार्मिक क्षेत्र के श्रेष्ठ साधु पुरुष मिलते हैं, हम लोगों पर उनकी कृपा है। राजनीति के क्षेत्र के मिलते हैं, शिक्षा-क्षेत्र वाले मिलते हैं, विभिन्न समस्याएँ सामने रखते हैं और कहते हैं कि हमें परामर्श दीजिये। ये सब बातें मन में एक प्रकार से अभिमान उत्पन्न करने वाली अवश्य हैं, परन्तु मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि इस पर कोई गर्व किया जाये। गर्व करने की यदि कोई बात हो तो यही है कि **'ईश्वरीय संकेत और संयोग से मैं अपने संघ का स्वयंसेवक हूँ।'**

कार्य-व्यवस्था : भावार्थ यह है कि स्वयंसेवक होने से बढ़कर गर्व और सम्मान की दूसरी बात हमारे लिए कोई नहीं। अब आप सोचेंगे कि यदि ऐसा है, तो अपने ये सब अधिकारी हैं, सरसंघचालक से लेकर गटनायक तक, उनका क्या? तो वह अपने कार्य की व्यवस्था है, क्योंकि कोई भी संगठन व्यवस्था के बिना चल नहीं सकता, और हमें भी संगठन चलाना है। अतः हमने वह व्यवस्था की है और प्रत्येक को एक-एक दायित्व सौंपा है। अर्थात् वह अब उस दायित्व का भार वहन करने वाला स्वयंसेवक है। परन्तु उसे भी जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यदि कोई बात माननी हो, तो वह यह है कि व्यवस्था में आज मुझे भले ही कोई अधिकार दिया गया हो, मैं स्वयंसेवक हूँ-यही एकमात्र गर्व की बात है। अतः सामान्यतः जब हम कहते हैं कि मैं एक साधारण स्वयंसेवक हूँ, तब इस दायित्व का बोध हमें अपने हृदय में रखना चाहिये।

यह दायित्व बहुत बड़ा है। समाज भी हमारी ओर देख रहा है, और समाज हमें एक स्वयंसेवक के रूप में देखता है। समाज की हमसे बड़ी-बड़ी अपेक्षाएँ रहें और उन अपेक्षाओं को पूर्ण करते हुए हम उनसे भी अधिक अच्छे प्रमाणित हों, ऐसा हमें लगता है।

शाखा कैसी हो? : साधारणतया हमें किन बातों की ओर ध्यान देना चाहिये? सर्वप्रथम हम संघ शाखा के विषय में विचार करें। हमारी शाखा कैसी होनी चाहिये? 1. शाखा नित्य लगनी चाहिये। 2. वह निश्चित समय पर लगनी चाहिये। 3. शाखा में भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यक्रम होने चाहिए। 4. सब स्वयंसेवकों में परस्पर मेलजोल, स्नेह, प्रेम और शुद्धता का वातावरण हो। 5. आपस में विचार-विनिमय, चर्चा आदि कर अपने अन्तःकरण में ध्येय का साक्षात्कार नित्य अधिकाधिक सुस्पष्ट और बलवान करते रहने की हमारे अन्दर प्रेरणा, इच्छा रहे। 6. सामूहिक रूप से नित्य हम अपनी प्रार्थना का उच्चारण करें। गम्भीरता से, श्रद्धा से, भाव समझ कर करें। 7. हमारे परम् पवित्र प्रतीक के रूप में जो अपना भगवा ध्वज है, उसे हम सब मिल कर नम्रतापूर्वक प्रणाम करें। 8. 'शाखा विकिर' के अनन्तर बैठकर आपस में बातचीत करें; कौन आया, कौन नहीं आया, इसकी पूछताछ करें। ये और ऐसी ही अपनी दैनिक शाखा के विषय में नित्य करणीय बातें हैं।

हमें क्या करना होगा? : 1. यदि शाखा नियमित एवं समय पर प्रारम्भ करनी है तो शाखा के निर्धारित समय से 'पर्याप्त पूर्व' हम अपने घर अथवा जहाँ भी हो वहाँ से निकलें और शाखा के समय से पूर्व (कम से कम दो मिनट पूर्व) संघ-स्थान पर उपस्थित रहें। कोई हमें बुलाने आयेगा तब जायेंगे, ऐसी प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं। बुलाने वाला अपना कर्त्तव्य करेगा; पर उसे कर्त्तव्य करने का अवसर देने के लिए घर पर ही बैठे रहें, यह हमारा काम नहीं है, यह बात सब ध्यान में रखें। 2. विचार करें कि मैं संगठन करने वाला मनुष्य हूँ, अकेलाराम नहीं। तब शाखा के लिए कुछ पहले निकलकर, जो भी आसपास स्वयंसेवक रहते हों, उन्हें पुकार कर अपने साथ क्यों न ले जायें? यह सामान्य मित्रता है, इसमें दायित्व का प्रश्न कहाँ उठता है? गटनायक अथवा गणशिक्षक बनने की आवश्यकता कहाँ है? सादी मित्रता है कि हम किसी अच्छे काम के लिए जाते हैं, तो अपने साथ अपना मित्र आये। अपने घर के आसपास अर्थात् शाखा के मार्ग पर जो कोई अपने बन्धु हों उन्हें पुकारकर, अपने साथ लेकर हँसते-खेलते आनन्द से हम संघ-स्थान पर पहुँचें, यह भी हमारे द्वारा

स्वाभाविकता से होना चाहिये। 3. संघस्थान पर सभी कार्यक्रम मन लगाकर करें, अनुशासनपूर्वक नियमानुसार करें। उनमें कष्ट हो तो रुष्ट न हों। अपने कार्यक्रम कष्ट-कर होते हैं। कष्ट करने का अभ्यास कर बड़े-बड़े काम सहज करने की शक्ति बढ़ानी चाहिये, इसलिए उन्हें प्रयत्नपूर्वक करें। यहाँ प्रथम बौद्धिक वर्ग में जैसा मैंने बताया, ये कार्यक्रम अन्तःकरण में निर्भयता, आत्मविश्वास, पराक्रम के भाव उतन्न कर, हम सबको एक अनुशासन में गूँथकर, हम सब एक महती शक्ति के अंग हैं इस अनुभूत को निरन्तर जागृत रखने के लिए हैं, इसलिए उन कार्यक्रमों का हम उत्तम अभ्यास करें। 4. प्रार्थना, ध्वज-प्रणाम, ध्वजावतरण होकर 'विकिर' होने पर भी तुरत-फुरत घर भागने की इच्छा क्यों होनी चाहिये? होनी नहीं चाहिये। घर जाने अथवा और कहीं घूमने जाने की इच्छा होने का अभिप्राय होगा कि हम शाखा में अनिच्छा से, बलात् आये थे ओर इस बला से छूट गये। हम किसी के दबाव से तो शाखा में आते नहीं आना भी नहीं चाहिये, हृदय से आयें, ऐसा अपने यहाँ कहा जाता है। तब यहाँ से भाग जाने की इच्छा क्यों ? ऐसा लगना चाहिये कि थोड़ी देर और यहाँ बैठें। अतः बैठकर दो बातें करें- शाखा में आने वाले स्वयंसेवक बन्धुओं में से कौन आये, कौन नहीं आये, इसकी ठीक जानकारी कर लें। जो न आया हो, वह क्यों नहीं आया, इसकी पूछताछ करें। यह नित्य का औपचारिक भाग हुआ। नित्य अपने ध्येय का स्मरण करें। हिमालय से लेकर दक्षिणी महासागर के तट तक असंख्य पवित्र स्थान बिखरे हैं। उनका स्मरण करें। अनेक ऐतिहासिक स्थल हैं; प्रत्येक स्थल से किसी महापराक्रमी पुरुष की कुछ न कुछ विशेषता जुड़ी हुई है, उसका स्मरण करें। उस महापुरुष की विशेषता में से जो गुण प्रकट होते हैं, उनका सब मिलकर एकत्र बैठकर स्मरण करें और सोचें कि ये गुण अपने में हैं या नहीं? अपने अन्दर इन गुणों का विकास करने का हम प्रयास करते हैं, या नहीं? या हम केवल शिवाजी का नाम लेते हैं? आजकल शिवाजी का नाम लेने वाले बहुत हो गये हैं, अकारण लेते हैं। किन्तु उनके गुण अपने अन्दर आने चाहिये। शिवाजी कहने पर अखिल भारतवर्ष में स्वातंत्र्य-सूर्य का फिर से उदय कर हिन्दुओं का प्रभुत्वसम्पन्न, धर्माधिष्ठित पवित्र राज्य-स्थापना का महान् उपक्रम करने वाला असामान्य वीर, नीतिमान, चतुर राजनीतिज्ञ, साथ ही अत्यन्त उज्ज्वल विशुद्ध राष्ट्रीय चरित्रयुक्त एक विलोभनीय महान् व्यक्तित्व हमारे सामने आता है, उनके ये गुण हमारे अन्दर आयें। इस प्रकार एक-एक श्रेष्ठ

पुरुष का विचार करते हुए हमने अपने गुणों का विकास करने का कितना प्रयास किया? विपरीत अवगुणों को दूर करने का कितना प्रयास किया? इसका विचार अकेले करें, सब मिलकर करें और फिर जो न आये हों, वे क्यों नहीं आये, इसका पता लगाने सबके यहाँ जायें। छोटी-छोटी टोलियों में जायें। उनसे मिलें, कोई कठिनाई हो तो उसका निवारण करने का प्रयास करें कठिनाई न हो तो अकारण शाखा से अनुपस्थित रहना ठीक नहीं, यह बात उसे भली भाँति, अच्छे शब्दों में समझायें। दूसरे दिन से वह उपस्थित रहने की चिन्ता करें, इस प्रकार उसे समझायें। यह है हमारा नित्य का न्यूनतम कार्य। 'साधारण स्वयंसेवक' के रूप में इतना हमें करना ही चाहिये। इसके अतिरिक्त भी हमारे लिए कुछ कर्त्तव्य हैं।

पड़ोसी का धर्म : हम जहाँ रहते हैं, उसके आस-पास अनेक घर होते हैं, जहाँ कतिपय लोग रहते हैं अर्थात् सब मिलकर हम एक दूसरे के पड़ोसी हैं। अब अपना कुछ पड़ोसी-धर्म भी है। उस धर्म के अनुसार हमें यह जानकारी करनी चाहिए कि इन पड़ोसियों का जीवन-यापन कैसे चलता है। उनकी कठिनाइयाँ, दुःख क्या हैं? हम उनकी सहायता में तत्पर रहें, यह पड़ोसी का धर्म है। पड़ोस में कोई गड़बड़ हुई, तो अपना दरवाज़ा अन्दर से बंदकर बैठना, यह कोई पड़ोसी-धर्म नहीं है। पड़ोस में कोई अस्वस्थ हुआ, तो अपने भाग्य से हुआ, चाहे जिये चाहे मरे, ऐसा सोचकर उसकी अनसुनी करना पड़ोसी का धर्म नहीं है, इसमें तो मनुष्यता भी नहीं है, अतः पड़ोस-धर्म का पालन करने हेतु घर-घर में जाना, सबसे मिलना, बोलना सबसे अत्यन्त स्नेह और आत्मीयता के सम्बन्ध रखने का प्रयास करना और इस बात का भी कि सबके हृदय में हमारे बारे में ऐसी धारणा बने कि यह व्यक्ति विश्वास करने योग्य है, इसमें अपने प्रति निष्कपट, निःस्वार्थ प्रेम है, यह अपना सच्चा मित्र है, अपने को कोई कष्ट नहीं होने देगा, नित्य अपना साथ देगा और सहायता के लिए दौड़ा आयेगा। सबके हृदय में हमारे प्रति विश्वास हो, इस विश्वास के बल पर हम सब पड़ोसी मानो एक बड़ा परिवार बने, ऐसी जीवन की रचना हो, ऐसा हम प्रयास करें। इस प्रकार जब हम स्नेह, आत्मीयता, विश्वास का वायुमण्डल सभी पड़ोसियों से उत्पन्न कर सकेंगे, तब उन्हीं में से अपने संघ-कार्य के लिए स्वयंसेवक भी प्राप्त कर सकेंगे।

बुद्धिवाद नहीं चाहिये : अब कोई यदि सोचता हो कि मैं बड़ा बुद्धिमान् हूँ और बुद्धि के बल पर दूसरे को संघ-कार्य की अच्छाई समझा दूँगा और वह हमारे

साथ आयेगा, तो यह उसकी भूल है। माना कि अपने पास बुद्धि है, हम लोगों से वादविवाद और तर्क करने में समर्थ भी हों, परन्तु यह सत्य नहीं है कि इस कारण हमारी बात लोगों को जँचेगी। कुछ लोग वादविवाद में हमसे निरुत्तर हो सकते हैं, हो सकता है अपनी पराजय मान भी लेंगे, परन्तु कार्य स्वीकार करेंगे, ऐसा कतई नहीं होगा। मुझे स्मरण है कि अपने एक अच्छे वकील स्वयंसेवक थे। मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि उनके मन में संघ के विषय में अनेक प्रकार के सन्देह, आशंकाएँ हैं, उनकी मुझसे मिलने और बात करने की इच्छा है। वह मेरा पुराना परिचित और कुछ दिन शाखा में आया हुआ था। अतः मैं उसके घर गया और पूछा कि तुम्हारे मन में क्या है, बताओ। फिर उस दिन मेरी उससे लगभग डेढ़-दो घण्टे बातचीत हुई। अब इतना बोलने के लिए अवसर नहीं मिलता, परन्तु उस समय संघ का कार्य इतना बढ़ा नहीं था और आजकल जो अनेक झंझटे उपस्थित हुई हैं, वे भी नहीं थी, इसलिए मुझे समय मिल गया। दो घण्टों से उसके जो भी सन्देह और आशंकाएँ थीं, उन सबका समाधान करने का मैंने प्रयास किया। प्रत्येक बार वह कहता, 'यह ठीक है, पर गुरुजी...', और पुनः वह वही बात पूछता। मैं उसे फिर वही समझाता और वह कहता, 'यह आपका कहना ठीक है गुरुजी, पर ....?' मैंने उसे कहा- "अरे भाइ, आपके कितने 'पर' हैं? मैं एक-एक पर उखाड़ता जाता हूँ, एक-एक नया पर उगता जाता है, क्या बात है ?" अर्थात् उसे समझाना सम्भव नहीं हुआ। बुद्धि से उसकी आशंकाओं का समाधान हो गया, परन्तु 'संघकार्य हम कर सकेंगे', ऐसा उसे जँचे, यह नहीं हुआ। इसका अर्थ अपने में बुद्धि नहीं, ऐसा प्रमाणित नहीं होता, किन्तु बुद्धि की अपनी सीमाएँ हैं, उनके आगे वह जा ही नहीं सकती। हम क्या करें? फिर लोग हमारी बात कैसे मानते और ग्रहण करते हैं? उसके कुछ कारण हैं।

(1) कुछ लोग ऐसे हैं कि मानो परमात्मा ने उन्हें संघकार्य के लिए ही नियोजित कर रखा है। यदि किसी ने उसके पास जाकर शाखा पर चलने अथवा संघ का कार्य करने की बात कही, तो कहीं उनके पूर्व-जन्म के संस्कार तुरन्त जागृत होते हैं और वे हमारे साथ सहयोगी बन खड़े हो जाते हैं। उन्हें कुछ समझाना नहीं पड़ता। ऐसे बहुत लोग हैं। यह एक कारण हो सकता है। (2) कुछ लोग स्वयं सोच-विचार कर, देश की परिस्थिति आदि देखकर विवेकपूर्वक संघकार्य के अतिरिक्त गत्यंतर नहीं - ऐसा सोचकर कर्त्तव्य-बुद्धि से कार्य करने हेतु आगे आते हैं। और (3) कुछ लोग स्नेह के, मित्रों के भूखे

रहते हैं। संघ में यह भूख पूर्ण होती है। इसलिए वे आते हैं।

स्वार्थ नहीं चाहिए : कभी कोई स्वार्थ के कारण भी आता है। एक आये थे हमारे यहाँ, वकील थे। शाखा में दिखे मुझे। मैं भी उनके साथ बहाना बना रहा था, वकील होने का। तो मैंने उनसे कहा- 'कहिये, आज आप शाखा में दिख रहे हैं?' वे बोले -'जी हाँ, मुझे ऐसा लगने लगा कि शाखा में जाना चाहिये।' मैंने पूछा -'क्यों लगने लगा?' वे बोले -'कुछ नहीं, संघ का कार्य अच्छा है।' मैंने सोचा कि इतना एकाएक इसे कैसे लगा? कुछ न कुछ दाल में काला है। इसके मन में क्या है, पता लगाना चाहिये। यद्यपि वे वकील के नाते मुझसे पुराने थे, फिर भी सोचा कि गहराई में जाकर पता लगायें। इसलिए मैंने इधर-उधर के बहुत से प्रश्न किये। समझ में आया कि नागपुर में वकील स्वयंसेवकों के लिए एक योजना बनी थी, उन्हें नागपुर तहसील और ज़िले में संघशाखा प्रारम्भ करने का काम सौंपा गया था। सप्ताह में शनिवार जाना और वहाँ क्या काम किया, इसका वृत्त-निवेदन अगले मंगलवार रात्रि की बैठक में कर अगले सप्ताह के सम्बन्ध में योजना बनाना, इन्हें इस बात का पता लगा। इनके ध्यान में आया कि इससे उस वकील का ज़िले भर में परिचय होगा। ज़िला-केन्द्र पर न्यायालय विषयक कुछ न कुछ काम निकलता ही है, तो ये परिचित लोग उसी वकील के पास आयेंगे। हम भी इनमें घुस जायें तो अपने पास भी लोग आयेंगे, धन्धा बढ़ेगा। इस व्यावसायिक स्वार्थ के कारण वह आया। मैंने कहा था न कि कोई स्वार्थ से भी आता है, वह स्वार्थ से आया था। मैंने उससे बातचीत में सब निकाल लिया। उसने कहा- 'ज़िले के सब लोग काम के लिए नागपुर आते हैं। यदि मेरा उनसे परिचय बढ़ा तो मेरे पास आयेंगे और मेरा काम अच्छा चलेगा।' मैंने उसे कहा- 'आपने अध ूरा विचार किया।' वह बोला- 'अधूरा विचार कैसे?' मैंने कहा- 'आप स्वयंसेवक मित्र हैं इसलिए अपनत्व के कारण वे आपकी ओर आकर्षित होकर आपके पास काम लेकर तो आयेंगे, पर अपने होने के कारण वे आपको शुल्क नहीं देंगे।' यह सुनकर उन्हें धक्का सा लगा, बोले- 'सचमुच ऐसा होता है क्या?' मैंने कहा- 'मेरा ही उदाहरण देख लीजिए न!' मेरा उदाहरण देखो कहने पर उन्हें तुरन्त जाँच गया कि यहाँ कुछ मिलने वाला नहीं है। दूसरे दिन से उनका शाखा आना बन्द हो गया। **बहस नहीं चाहिये :** तो ऐसे अनेक कारणों से लोग शाखा में आते हैं, परन्तु हमने किसी से वाद-विवाद किया और बहस में उसे हराया और इसलिए अपनी पराजय स्वीकार कर उसने 'अच्छी बात है, आऊँगा शाखा में'

कहा और आने लगा, ऐसा कभी नहीं मिलेगा। यदि हमने केवल बुद्धि का प्रयोग किया, हम दूसरे से अधिक बुद्धिमान् हैं ऐसा दर्शाया, तो किसे अच्छा लगेगा? यह मुझसे ज्यादा बुद्धिमान है, मुझमें बुद्धि कम है, ऐसा मान्य करना किसे अच्छा लगेगा? किसी को नहीं। उसे लगेगा यह मेरा अपमान है, और इसलिए वह हमसे दूर रहेगा, कन्नी काटेगा। मेरा यही अनुभव है। मेरा एक मित्र था, विषय भिन्न थे, किन्तु हम एक ही कक्षा में थे। उसे बहस करने में बड़ा आनन्द आता था। बहुत पढ़ा था, बहुत अध्ययन था, इस लिए वाद-विवाद का उत्साह भी था, और हम बहस किया करते थे। दो-चार बार ऐसा हुआ कि बहस में उसकी हँसी हुई और मित्रमण्डली उसे कहने लगी, 'तुम बड़े विद्वान् बने फिरते हो, फिर यहाँ क्यों बोलती बन्द हो जाती है तुम्हारी?' अपने उपहास को देखकर मुझसे मिलने से कतराने लगा। सामने आता दिखा, तो पास की किसी गली में खिसक जाता। दो-चार बार मैंने देखा। एक दिन ऐसे ही गली में घुसते हुए देखकर मैंने दौड़कर उसे पकड़ लिया और कहा- 'कहाँ भागे जा रहे हो? 'वह बोला- 'मैं आपसे नहीं बोलता, क्योंकि आप सबके सामने मेरी हँसी उड़ाते हो। अपनी हँसी कराने और अपमान करवाने के लिए कौन आपसे बात करे?' मैंने कहा-'अरे, तुमको ही तो वाद-विवाद करने का व्यसन है, मुझे कतई व्यसन नहीं। तुम्हारा व्यसन पूरा करने के लिए, मेरी इच्छा न होते हुए भी मैं बहस करता हूँ। अब उस बहस में तुम घपले में पड़ जात हो, हँसी उड़ती है, तो मैं क्या करूँ? कोई बात नहीं। अब हम निश्चय कर लें कि हम बहस नहीं करेंगे, ठीक है? अरे, वाद-विवाद के व्यसन के लिए क्या हम अपनी मित्रता छोड़ दें? मित्रता महत्त्व की है, वाद-विवाद नहीं।' इस प्रकार उसे समझा कर तब से उसके साथ वाद-विवाद करना छोड़ दिया। परन्तु उसी दिन मन में गाँठ बाँध ली कि वाद-विवाद से मनुष्य हमसे टूटता है, दूर जाता है, पास नहीं आता।

शुद्ध प्रेम ही आधार : वाद-विवाद में बुद्धि का उपयोग अवश्य होता है, किन्तु इस प्रकार किया तो वह उपकारी नहीं, प्रत्युत् अपकारी होता है। फिर सब लोग पास कैसे आयेंगे? हम उन्हें संघ का कार्य समझा सकें, ऐसी स्थिति कैसे उत्पन्न होती है? इसके लिए प्रथम हम दोनों, अर्थात् हम और जिसे हमें समझाना है उस के बीच अन्तःकरण की एकात्मता स्थापित होनी चाहिये। वह और हम, दो शरीर किन्तु एक आत्मा, ऐसी अभिन्न-हृदय मित्रता की स्थिति उत्पन्न होनी चाहिये। यह स्थिति उत्पन्न होने पर हमारे हृदय की

ध्येनिष्ठा उसके हृदय में प्रविष्ट होगी और ऐसे विशुद्ध प्रेम के आधार पर ही एक-एक मनुष्य को हम अपना कर उसमें अपने ध्येय की उपासना, भक्ति करने की इच्छा जागृत कर उसे अपना सहयोगी बना सकते हैं। इसके लिए हमें अत्यन्त विवेकपूर्वक अपना चरित्र बनाना होगा। पड़ोसी से उत्तम व्यवहार, उसके जीवन में भली भाँति समरस होकर, उसका सुख-दुःख समझकर सुख की वृद्धि और दुःख का निवारण करने हेतु, चाहे जो कष्ट करने के लिए नित्य सिद्ध रह कर, सबको अपनाने का प्रयास करना चाहिये। इस विषय में कभी आलस्य न करें, यह ध्यान रखें। इसी का दूसरा स्वरूप है कि केवल पड़ोसी ही नहीं, अपितु हम जहाँ भी काम करें, वहाँ जो भी हमारे सम्पर्क में आयें, चाहे हमारे सहपाठी छात्र हों अथवा हम कहीं सेवारत हों तो हमारे समान अन्य छोटे-बड़े जो कर्मचारी हों उनके अथवा उद्योग, व्यवसाय में सम्बन्ध में आने वाले विविध श्रेणी के लोगों के साथ हमारा ऐसा व्यवहार हो कि सबके अन्तःकरण में हमारे विषय में श्रद्धा, आदर, आत्मीयता उत्पन्न हो और हम सब अन्तःकरण से एकरस हो जायें। इस आत्मीयता के कारण हमारे हृदय की संघ विषयक दृढ़ अनुभूति उनके हृदय में स्वयंमेव संक्रमित होगी। ऐसा ध्यानपूर्वक प्रयास करना चाहिये। ये सब काम करना 'साधारण स्वयंसेवक' के रूप में हमारा कर्त्तव्य है। उसके लिए असाधारण होने की आवश्यकता नहीं है। यह प्रत्येक स्वयंसेवक का काम है और इसे करते हुए हम संघकार्य की वृद्धि कर सकते हैं।

विश्वासपात्रता : यह सब करने के लिए आवश्यक कौन-सी बात है? हमें लोगों का विश्वासपात्र बनना होगा, और उनके लिए कष्ट उठाने हेतु हम सर्वदा और सर्वथा तत्पर रहें। वह भी स्वेच्छा से, अन्तःस्फूर्ति से। केवल अपना काम है इसलिए किसी प्रकार निपटाना है, ऐसा नहीं, वरन् वास्तव में परस्पर विशुद्ध आत्मीयता का नाता अनुभव करके करना चाहिये। हम जो उनके अन्दर संघ-कार्य के प्रति प्रेम उत्पन्न करना चाहते हैं उस **'संघकार्य में हमारा आचरण अपेक्षानुसार सम्पूर्णतया निर्दोष होना चाहिये।'** अन्यथा, हम किसी से कहेंगे कि शाखा में आना, और हम ही शाखा से गोता लगाकर सिनेमा देखने चले जायेंगे, तब कौन आयेगा ? कौन सुनेगा हमारी बात ? हमारे द्वारा कार्य नहीं होता अथवा हमारा कर्त्तव्य प्रकट नहीं होता, उसके अनेक कारणों में से प्रमुख कारण है कि हम सच्चाई से कहाँ काम करते हैं? अपेक्षानुसार कहाँ काम करते हैं ? हम इधर-उधर के छोटे-मोटे कारण से शाखा के दैनन्दिन कार्य में एक

प्रकार से टालमटोल कर ढिलाई करते हैं, तब कोई हमें मानता नहीं। इस प्रकार स्वयं व्यवहार कर हम किसी से बात करें, तो वे कहते हैं-'पता है आपका कैसा व्यवहार है, आप जो झण्डे फहरा रहे हैं, हम जानते हैं।' तब हम निरुतर हो जाते हैं। इसलिए अपना आचरण सम्पूर्णतया निर्दोष हो, यह अत्यन्त महत्त्व की बात है। अब इस दृष्टि से हम स्वयं अपने बारे में विचार करें कि क्या हम सबके विश्वास के लिए पात्र बने हैं। विश्वासपात्र होने के लिए क्या चाहिये? अपना जीवन शुद्ध चाहिये, जो अशुद्ध, अपवित्र होगा, जिसमें अनिष्ट प्रवृत्ति होने की सम्भावना होगी, उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। इसलिए हमें अपना जीवन शुद्ध बनाना होगा; शुद्ध माने निर्दोष, धुले चावल जैसा। व्यक्ति के नाते यह मनुष्य अत्यन्त पवित्र, शीलवान् है, ऐसी हम में से प्रत्येक स्वयंसेवक के बारे में समाज के प्रत्येक व्यक्ति की धारणा होनी चाहिये, प्रत्यक्ष वैसा अनुभव आना चाहिये। स्वयंसेवक को अत्यन्त सुशील होना चाहिये।

शुद्ध चरित्र : अपने संघ-कार्य का जिन्होंने निर्माण किया उनका आदर्श हमारे सामने है। वे अत्यन्त विमल चरित्र के थे। परम् पूजनीय डॉक्टरजी थे तब की बात है, एक महानिर्वाचन हुआ था। उनके दो पुराने सहयोगी, भिन्न-भिन्न दलों में होने के कारण, एक दूसरे के विरुद्ध खड़े थे। उनमें से एक के साथ अपने डॉक्टरजी का आत्मीयता का सम्बन्ध था। अतः अपने इस सहयोगी के लिए प्रयास करना अपना कर्त्तव्य समझकर डॉक्टर जी थोड़ा-बहुत प्रयास कर रहे थे। दूसरे जो सहयोगी थे, बड़े प्रभावी वक्ता थे, गरज कर बोलते थे, हज़ारों लोग उनका भाषण सुनने आते थे, क्योंकि गिन-गिन कर चुनी हुई गालियाँ देने में वे मँजे हुए खिलाड़ी थे। आजकल लोग गालियाँ सुनने के अभ्यस्त होने के कारण उन्हें गाली-विहीन भाषण अच्छा नहीं लगता, इसलिए हज़ारों लोग उनका भाषण सुनने आते। फिर वहाँ अपने प्रतिस्पर्धी और उसके सहायकों-समर्थकों के निजी जीवन की बातें और दोष खोद-खोदकर उभाड़कर उनका भण्डाफोड़ करना और प्रत्येक की ऐसी दुर्दशा बना देना कि वह सार्वजनिक सभा में बोलने, लोगों के सामने खड़े होने का साहस न कर सके, इस काम में वे सिद्ध-हस्त थे। अपने भाषण में उन्होंने यह भी कहा कि मेरा प्रतिपक्षी नगर में कहीं सभा कर नहीं सकेगा, ऐसी स्थिति मैं निर्मित करूँगा। उन्होंने ऐसा किया भी। डॉक्टर जी के मित्र को भी सभा करने की इच्छा हुई। डॉक्टर जी ने कहा-करो। सभा हुई। सभा उखाड़ने के लिए लोग कमर कस कर आये। अपने डॉक्टरजी वहाँ कुर्सी पर बैठे थे। उनका भव्य शरीर देखकर

गड़बड़ करने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। यहाँ कुछ गड़बड़ की तो नानी याद आ जायेगी! पूरी सभा शान्ति से सम्पन्न हुई। बाद में वह प्रतिस्पर्धी बोले- 'क्या बताऊँ? मेरे प्रतिपक्षी के सभी सहायकों की कलई खोलकर उनके मुँह मैंने बन्द करा दिये हैं। अब यह जिसके आधार पर खड़ा है, उसके विरुद्ध बोलने के लिए मेरे पास एक शब्द नहीं है।' अर्थात् डॉक्टर जी के विरुद्ध कौन क्या बोले? अन्तर्बाह्य निर्मल, उज्ज्वल चरित्र! क्या दोष दें, किस बात का भण्डा-फोड़ करें? क्या करते वे? कहने लगे, 'क्या करूँ? इनके विरुद्ध बोलना संभव नहीं और इस अकेले के बल पर मेरा प्रतिस्पर्धी गरज रहा है।' यह हमारे सामने आदर्श है। लोगों के मन में डॉक्टर जी के प्रति कितना विश्वास था, इसके कई उदाहरण हैं।

डॉक्टर जी के एक मित्र को एक बार पैसे की आवश्यकता हुई, तो वह आया डॉक्टर जी के पास। आश्चर्य की बात, डॉक्टर जी के पास पैसे कहाँ से आते ? किसी ने मुझे बताया कि वे नागपुर में डॉक्टरी का व्यवसाय करते थे, पर मैंने तो उन्हें व्यवसाय करते कभी नहीं देखा। वे दो औषध अवश्य साथ रखते थे-क्विनाइन की गोलियाँ और लिनिमेण्ट आयोडीन। किसी को खेलने में चोट लग गयी, तो आयोडीन का फाहा लगा देते और यदि किसी को ज्वर, जुकाम हो तो क्विनाइन की गोली खाने को देते, स्वयंसेवक को देते, धन्धा नहीं करते थे। तब उनके पास पैसा कहाँ होगा? पर मित्र को विश्वास था कि डॉक्टर जी कुछ न कुछ व्यवस्था करेंगे, इसलिए आया माँगने। डॉक्टर जी ने उसको बिठाया और कहा कि ला देता हूँ। निकट के कुछ धनी मित्रों के पास गये, किन्तु संयोग से कोई घर नहीं मिला। तब तांगे में बैठकर कुछ दूर रहने वाले मित्र, कांग्रेस के एक नेता बॅरिस्टर अभ्यंकर के यहाँ पहुँचे। वे अपने एक सहयोगी के साथ गपशप कर रहे थे। इन्हें देखते ही, 'आइये, आइये, डॉक्टर हेडगेवार! इधर कैसे रास्ता भूले?'-इस प्रकार हँसी के स्वर में बोले, क्योंकि वैसे ही आत्मीयता के सम्बन्ध थे। डॉक्टर जी ने कहा-'इस समय मेरे पास आमोद-प्रमोद के लिए समय नहीं है, कुछ निजी काम है।' वे समझ गये, कुछ गम्भीर बात है। तुरन्त अन्दर ले गये। डॉक्टर जी ने कहा- 'अभी पाँच सौ रुपये चाहिये।' वे बोले-'क्यों? आपके उधर के सब मित्र क्या मर गये?' डॉक्टर जी ने कहा, 'ये बातें बाद में करेंगे। पैसा देंगे या नहीं, बताइये। देना हो, तो तुरन्त निकालो, नहीं तो वैसा कहो। मैं और कहीं जाऊँगा।' बॅरिस्टर बोले-'गुस्सा मत करो भाई! आप आयें और कहें-पाँच सौ

रुपये चाहिये, और मैं न दूँ? क्या करना ऐसी सम्पत्ति का?' तत्काल उन्होंने पाँच सौ रुपये निकाल कर दिये। डॉक्टर जी बोले-'प्रॉमिसरी नोट लिखे देता हूँ।' बॅरिस्टर अभ्यंकर बोले-'अभी मेरा मस्तिष्क ठिकाने पर है। लोगों को पता लगेगा कि मैंने डॉक्टर हेडगेवार से प्रॉमिसरी नोट लिखवाया, तो मेरे मुँह पर थूकेंगे, कहेंगे-यह अभ्यंकर पागल हो गया है, डॉक्टर हेडगेवार से प्रॉमिसरी लिखवाता है! आप ये ले जाइये, हो सके तो वापस कीजिये, या मत कीजिये, पर मैं आपसे प्रॉमिसरी नोट नहीं लूँगा।' हमारे विषय में कोई ऐसा कहेगा? कहना चाहिये। ऐसा विश्वास हमारे बारे में भी लोगों में निर्मित हो, ऐसी शुद्धता हमारे अन्दर हो। सब बातों में नितान्त निर्मल, अर्थात् जो दो बातें चरित्र का नाश करती हैं-काम और कांचन, उनका अपने मन पर आघात न होगा, इस सीमा तक हमारा अन्तःकरण शुद्ध, निर्लिप्त बने, इसका बुद्धिपूर्वक प्रयास करना चाहिये। कर सकते हैं, कठिन नहीं है, असम्भव तो कदापि नहीं, तभी हम विश्वसनीय बनेंगे। फिर किसी के घर जाने-आने पर उसे कभी नहीं लगेगा कि यह क्यों आया। प्रत्येक घर के दरवाज़े हमारे लिए मानो चौबीस घण्टे खुले हैं, ऐसी स्थिति होगी। इस प्राकर स्वयं शुद्ध-चरित्र बनकर विश्वासपात्र बनें और सबके लिए कष्ट उठाने की सिद्धता हो। कष्ट करना, बुद्धिपूर्वक कष्ट करना माने सबका हर काम, बिना मूल्य का नौकर बनना नहीं, वरन् उनके हृदय में हमारे विषय में सत्कार, आदर उत्पन्न हो, हमारे कष्ट करने से उनके मन में श्रद्धापूर्ण संकोच उत्पन्न हो, इसलिए हमें करना चाहिये। इसी के साथ यदि हमारा संघ-दृष्ट्या व्यवहार ठीक रहा तो हमारे अन्तःकरण की संघनिष्ठा और विचार ग्रहण कर लोग हमारे साथ संघकार्य में खड़े होंगे।

कार्यवृद्धि का अर्थ : इन बातों को हम अपने को 'साधारण स्वयंसेवक' समझकर अपने जीवन में लायें। ये सब कर्त्तव्य समझकर हमें करने चाहिये। इनसे क्या लाभ हैं? ये सब काम सहज, हँसते-खेलते, बिना परिश्रम होने वाले काम नहीं हैं। उनके लिए बहुत परिश्रम करना होगा। मन में प्रश्न उठता है-यह सब किसलिए? कोई कहेगा-संघकार्य बढ़ाने के लिए। कोई सोचेगा-कार्य बढ़ाना माने क्या? बहुत हुआ है, संघ चल रहा है, कभी समचार-पत्र में नाम आता है, कभी लोग विरोध में बोलते हैं। बोलना पड़ता है, वे क्या करें? तो सब हो गया, अब पर्याप्त हो गया, और कितना बढ़ाना है? हम विचार करें। क्यों बढ़ाना? हमने क्या लक्ष्य सामने रखा है? हिन्दू समाज में एक छोटा सा संगठन बनाना हमारा लक्ष्य नहीं है। अखिल हिन्दू समाज को संगठित करने

का लक्ष्य रखा है। अब इतना बड़ा हिन्दू समाज संगठित कैसे होगा और सबके सब संघस्थान पर कैसे खड़े होंगे? लोग कहेंगे- क्या ऐसा कभी संभव है? उनका कहना ठीक है। एक बात स्पष्ट है कि वह केवल पुरुषों का काम है, तब कम से कम समाज के आधे लोग तो शाखा पर नहीं आयेंगे। कुछ कहते हैं-हमें क्यों नहीं लेते? परन्तु यह पुरुषों तक सीमित है। अब जो बहुत छोटे हैं, वे आ नहीं पाते और जो बहुत वृद्ध या अपंग हैं, वे चाहकर भी आ नहीं सकते। संघशाखा पर कौन आ सकता है इसकी पुरानी परिभाषा है, कि जो स्वयं के दो पैरों पर चलकर आ सकता है वह आये। दो पैरों पर चलना सीखे शिशु से - जिसके पैरों ने चलना बन्द नहीं किया ऐसे वृद्ध तक सब लोग हमारी दृष्टि से शाखा के योग्य स्वयंसेवक हैं। परावलम्बी शिशुओं और वृद्धों को छोड़ शेष सभी आयेंगे क्या? प्रायः लगता है, नहीं आयेंगे, तब क्या किया जाए ? तब हमारा संगठन कभी होगा ही नहीं? इसलिए हमारे सामने कोई निर्धारित मर्यादा (सीमा) चाहिये। लोग पूछते हैं-क्या मर्यादा हो?

बहुत पहले एक बार अपने डॉक्टर जी ने कहा था, कि इतने प्रतिशत स्वयंसेवक बन जायें तो न्यूनतम मर्यादा (सीमा) पूरी होगी। अब मैं प्रतिशत् का अंक नहीं बताता, क्योंकि उस समय मैंने बताया था तो लोगों ने उसका विपर्याहस किया था। मैंने एक स्थान पर कहा कि इतने प्रतिशत संख्या करनी है, और कार्यकर्ताओं पर भूत सवार हुए और काम में लग गये। इधर-उधर शाखाएँ और सर्वत्र स्वयंसेवक होकर मुझे पत्र आया कि 'हमारे यहाँ आपके निर्धारित प्रतिशत् स्वयंसेवक हो गये हैं। काम पूरा हो गया है, अब बताइये, क्या करें?' मैंने (विनोद में) उन्हें पत्र लिखा कि सत्यनारायण की एक कथा करो, सबको प्रसाद खिलाओ और संघ बन्द करो! और क्या कहता? कितनी भ्रान्त ध ाारणा है, प्रतिशत् अनुपात के विषय में! अतः ऐसा कुछ न बोलें जिससे विपर्याहस हो। तब क्या कहा जाए?

समूचे समाज के लिए : हमने साधारण स्वयंसेवक के कर्त्तव्यों के बारे में जो सोचा, उसमें अपने सम्पूर्ण समाज से आत्मीयता का स्नेह सम्बन्ध स्थापित करने की बात कही। केवल अपने नगर में, अपनी शाखा के परिसर में ही नहीं, अपितु हमें यह सम्बन्ध समग्र हिन्दू समाज के साथ स्थापित करना है। नगरवासी, ग्रामवासी, दुर्गम वनों, अरण्यों, गिरिकन्दराओं के निवासी, सभी अपने बन्धु हैं, उन सबसे अपना नित्य जीवन्त सम्बन्ध रहे, आत्मीयता का सम्बन्ध रहे, मेलजोल, विश्वास और सहकार्य का सम्बन्ध रहे, इसके लिए

जितने कार्यकर्ता आवश्यक हैं उतनों से युक्त उतनी शाखाएँ और वे भी पूरे देश में फैली हुई, नित्य नियमित चलने वाली शाखाएँ हमें चाहियें। विचार कीजिए यह बहुत बड़ा काम है, और उसे हमें करना है। उससे कम किसी काम में हमें संतोष नहीं होगा। अतः अपने-अपने कार्य की कम से कम सीमा तक तो कार्यवृद्धि करनी है, और सीमा तक पहुँचने के अनन्तर उसे कम नहीं होने देना है। अर्थात् कार्य की उतनी वृद्धि और उसके बाद कार्य को कम से कम उस सीमा तक नित्य चिरंजीव बनाकर टिकाये रखना, इस प्रकार जीवनव्यापी कार्य हमारे सामने है। अब हम विचार करें कि अभी हमारा कितना काम है और जितना होना चाहिये उसके मान से वह कितना न्यून है। इसलिए 'साधारण स्वयंसेवक' के नाते हमें कितना अधिक परिश्रम करना आवश्यक है, उसमें ढील अथवा टालमटोल करना हमारे लिए कैसे अनिष्ट, अयोग्य और अशोभनीय है, इसका हम विचार करें और तदनुसार फिर से अपने जीवन की रचना करें तथा अत्यन्त कर्तृत्ववान् कार्यकर्ता बन कार्य करने के लिए अग्रसर हों। यह सब त्वरा (Urgency) क्यों? कारण, हमें अपनी स्थिति दिखाई दे रही है। हमारा हिन्दू समाज स्वयं को भूल गया है। अपना राष्ट्र कहने का भी अनेक लोगों में साहस नहीं है। मातृभूमि के प्रति प्रेम नितान्त दुर्बल दिखाई देता है। अतः समाज में स्वार्थ की धूम मची है। सवार्थ के कारण दुर्गुण, अनीति फैली है। गुटबाज़ी, परस्पर ईर्ष्या, मत्सर की धूम मची है। समग्र समाज टुकड़े-टुकड़े, छिन्न-विछिन्न होकर मानो अधोगति की ओर अग्रसर है, ऐसी स्थिति हमें दिखाई देती है।

एकमात्र उपाय : इस फटे में पाँव डालने के लिए अनेक शत्रु हमारे घर में घुसे बैठे हैं। वे शत्रुता कर हमारे समाज को सुरंग लगाकर नष्ट करने का एक भी अवसर व्यर्थ नहीं खोते। इन शत्रुओं की सहायता करने वाले बाहरी शत्रु हैं, बाहरी शत्रुओं से मानो हमारा समूचा देश घिरा हुआ है। सभी सीमाओं पर शत्रु खड़े ललकार रहे हैं, घुसपैठ कर रहे हैं, कब सीधा आक्रमण करेंगे पता नहीं है। हम आपस में ईर्ष्या-मत्सर, लड़ाई-झगड़े, चरित्रशून्यता, राष्ट्र-विस्मरण आदि दोषों के कारण मानो एक प्रकार से अराजकता उत्पन्न कर रहे हैं और इस प्रकार की छिन्न-विछिन्न भीषण परिस्थिति के कारण आक्रमण की दशा में शत्रुओं का सामना करने की मानो शक्ति ही हमारे अन्दर न हो, ऐसी स्थिति दिखाई देती है। इन सब बातों को दृष्टिगत कर एक ही उत्तर हमारे सामने है, वह उत्तर माने दुखड़ा रोना नहीं, शत्रु को किसी तीसरे देश ने सहायता

अथवा शस्त्रास्त्र दिये, इस प्रकार प्रचार कर रोना कायरता और स्त्रैणता का लक्षण है। हम परिवाद (शिकायतें) करते फिरेंगे, या उनसे भी बलवान् बनकर डटकर खड़े होंगे? पराक्रमी, बहुगुणसम्पन्न, स्वाभिमानी राष्ट्र का क्या कर्त्तव्य है? परिवाद करना? हम अपने भुजबल के भरोसे पर खड़े रहेंगे, रहना होगा, बहानेबाज़ी से काम नहीं बनेगा। शेष लोग हम पर आक्रमण कर रहे हैं, ऐसा रोने-चिल्लाने से नहीं बनेगा, वे तो करेंगे ही, जब तक हम दुर्बल रहकर, उन्हें आक्रमण हेतु अनुकूलता देंगे, तब तक वे आक्रमण करेंगे, आघात करेंगे। तब हमारा काम क्या है? यह जो विशृंखलित समाज है, आत्मविस्मृति के ही कारण बिखरा है, उसकी विस्मृति को दूर करना। मेरी मातृभूमि, अखिल समाज मेरा, यह मेरा राष्ट्र, इस मेरी भूमि में मेरे इस राष्ट्र का जीवन सर्वसमर्थ, सर्ववैभव-सम्पन्न, सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, स्वाभिमानी बनकर संसार में आत्मविश्वास से खड़ा रहेगा, ऐसी अनुभूति प्रत्येक के अन्तःकरण में उत्पन्न करना, इस जागृति और हमारे नित्य के व्यवहार के बल पर समग्र समाज को आत्मविश्वास के सूत्र में गूँथना, सबको अनुशासन का अभ्यास कराकर आसेतु-हिमाचल, सब संकटों पर विजय पाने योग्य संगठित राष्ट्रशक्ति के रूप में अपने समाज को खड़ा करना है, अन्य कोई मार्ग नहीं है। अन्य सभी मार्ग लचर, बातूनी और ऊपरी हैं। हमारे समाज-शरीर में घुसी हुई मलिनता को हटाकर शरीर को पूर्णतया शुद्ध कर उसका समग्र चैतन्य और सारी शक्ति पुनः एक बार जागृत करने का कार्य ही अपने संघ का कार्य है, उसके अतिरिक्त तरणोपाय नहीं है। वह कार्य करने का सौभाग्य ईश्वर-कृपा से हमें प्राप्त हुआ है। हम उसके "साधारण स्वयंसेवक" हैं, यह असामान्य श्रेष्ठ मान्यता हमें प्राप्त है। यह अनुभूति मन में रखकर हम अपने कार्य में लग जायें। प्रत्येक की समग्र शक्ति, बुद्धि और समय कार्य में समर्पित कर अल्प कालावधि में हमारे लिए अपेक्षित संघकार्य की अत्यन्त विस्तृत अवस्था प्राप्त कर लेनी होगी। यह हमारा कर्त्तव्य है, सभी इसे ध्यान में रखें और तदर्थ अपने इस वर्ग (संघ-शिक्षा-वर्ग) से अधिकाधिक योग्य बनकर जायें, यही सब बन्धुओं से इस समय मेरी प्रार्थना है।

श्रद्धेय एकनाथ रानडे -जन्म शताब्दी वर्ष

मैं 1946 से संघ का स्वयंसेवक हूँ, अनेक बार पूर्व सरकार्यवाह स्वर्गीय एकनाथ रानडे के दर्शन किए। 1953 में पानीपत में श्री सनातन धर्म विद्यालय में 13 दिन का प्राथमिक शिक्षा वर्ग लगा था। उस वर्ग में 129 शिक्षार्थी थे, उसमें मैं भी I.T.C. करने गया था। वर्ग में एकनाथ जी भी पधारे थे। एक

चर्चा बैठक में परिचय के पश्चात् उन्होंने पूछा- किस स्वयंसेवक को लगता है कि मुझे आपका नाम याद नहीं रहा होगा-एकदम से मैं खड़ा हो गया- उन्होंने तुरन्त कहा- ओमी! तुम बैठ जाओ। मैं हैरान, क्योंकि माननीय स्वर्गीय श्री सोहन सिंह जी भी मुझे कभी-कभी इसी प्रकार ओमी बुलाते थे। मेरे बाद एक गाँव का स्वयंसेवक खड़ा हुआ- अरे! तुम हो धर्मदास, तुम्हारा गाँव गुमथला खास, ज़िला है करनाल। सभी स्वयंसेवक हैरान! उसके बाद उन्होंने उल्टी दिशा से सभी 129 स्वयंसेवकों के नाम बता दिए। उस समय हमारे विभाग के विभाग प्रचारक श्री ब्रह्मदेव जी (अब स्वर्गीय) ने कहा- हम सबको इस वर्ग में घनिष्ठ परिचय करना चाहिए। वर्ग के अन्तिम दिन उन्होंने सबसे पूछा- जिसे सभी 129 स्वयंसेवकों का परिचय याद हो वह खड़ा हो जाये। मैं सबसे पहले खड़ा हो गया और सभी 129 स्वयंसेवकों के नाम बता दिए। 1964 में मैं तृतीय वर्ष करने नागपुर गया, मुझे देखते ही मा. एकनाथ जी ने कहा- अरे ओमी! बड़ी देर कर दी तृतीय वर्ष करने के लिए आने में।

नरेन्द्र पहली बार जब स्वामी रामकृष्ण परमहंस से मिलने गए, तो स्वामी जी ने नरेन्द्र को देखते ही कहा- अरे तुमने आने में बड़ी देर कर दी, यह सुनकर नरेन्द्र जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्वविख्यात हुए, हैरान रह गए। कहा जाता है उनके अन्तिम दिनों में स्वामी विवेकानन्द को आभास हो गया था, कि किसी समय सप्तर्षि तारा मण्डल में कुछ मोक्ष प्राप्त आत्माएं एकत्र हुई थीं, वहाँ चर्चा हुई कि विश्व में गोब्रह्मण और धर्म का ह्रास हो रहा है, कुछ महापुरुषों को भारत भूमि पर अवतार लेकर धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिए। तब पहले स्वामी रामकृष्ण और उनके शिष्य रूप में स्वामी विवेकानन्द ने अवतार लिया। इतिहास साक्षी है कि भारता माता का उद्धार करने श्रीराम अकेले आए, श्रीकृष्ण ने अकेले अवतार लिया, महात्मा बुद्ध, श्री शंकराचार्य, स्वामी दयानन्द अकेले-अकेले आए। परन्तु इस आधुनिक काल में जब डॉ. हेडगेवार ने जन्म लिया, तो उनके साथ अनेक महापुरुषों ने श्रृंखलाबद्ध रूप से जन्म लिया। क्योंकि इस समय भारत अनेक भयानक समस्याओं से ग्रस्त है, इसलिए पहले डॉ. हेडगेवार, श्री गुरूजी, श्री बालासाहब देवरस, श्री रज्जू भैया, श्री के.सी. सुदर्शन इस कड़ी में अनेक ऐसे महापुरुषों में से एक विवेकानन्द स्मारक के शिल्पी श्री एकनाथ रानडे को भी उनके जन्म शताब्दी वर्ष 19 नवम्बर 2015 पर स्मरण करना सभीचीन होगा। **-सम्पादक**

सेवा भारती, भिवानी

ज़िला भिवानी में कुल 9 खण्ड हैं जिनमें दो नगर, सात ग्रामीण हैं। पाँच खण्डों में सेवा कार्य चल रहे हैं। नगर की 25 सेवा बस्तियों में से 20 बस्तियों में से 23 तथा ग्रामीण तीन कुल 26 सेवा कार्य हैं, नर सेवा, नारायण सेवा के उद्देश्य की पूर्ति हेतू सेवित समाज में उनकी भावनाओं के अनुरूप शिक्षा के साथ-साथ संस्कार के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक और स्वावलम्बन के आधार पर भेदभाव रहित सेवा प्रकल्प चल रहे हैं। सेवा कार्यों के माध्यम से समाज में परिवर्तन भी नज़र आना आरम्भ हो गया है। नगर में भिन्न-2 प्रकार से कार्यक्रम सम्पन्न हुए -

1. भिवानी की सेवा बस्तियों से 31 मई से 14 जून तक राष्ट्र सेविका समिति द्वारा आयोजित प्रशिक्षण शिविर में सेवित समाज की छात्राओं ने क्रमशः प्रीति, शोभा रानी व शिल्पा कुल तीन ने भाग लिया। भेदभाव, छुआछूत रहित मिलजुल कर कार्य करने का उनका अनुभव उल्लेखनीय रहा।

2. महिला समिति की ओर से 16 अगस्त को तीजोत्सव बहनों द्वारा उल्लासपूर्वक बनाया गया। बहन सारिका सोंकड़ा ने तीज उत्सव मनाने के महत्व बारे अपने विचार रखे। उन्होंने मिलजुल कर प्रेम से कार्य करने बारे, हमारी चिर पुरातन संस्कृति की रक्षा के लिए महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ने, सुनने और उन शुभ विचारों को आत्मसात करके व्यवहार में लाने की अपील की। परिवार, समाज और देश में देशभक्ति की भावना का जागरण हो तथा देश में उन्नति हो। इस पुण्य अवसर पर बच्चों ने रंग भरो प्रतियोगिता, 'रंगोली, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ', भ्रूण हत्या, स्वच्छ भारत-स्वच्छ हरियाणा, पर्यावरण विषयों पर प्रभावशाली विचारों को चित्रों के माध्यम से उकेर कर वाह-वाही का आनन्द लिया। प्रथम, द्वितीय व तृतीय को उनके उत्कृष्ठ चित्रों पर पुरस्कृत करके उत्साहवर्धन किया गया। इस अवसर पर सुषमा शर्मा, लीला, अनुराधा, सीमा बंसल व अन्य कार्यकर्ता बहनें उपस्थित रहीं।

3. i) खरक खण्ड के गाँव खरक कलां में 10 सितम्बर को बाल संस्कार केन्द्र का शुभारम्भ मा॰ जयवीर सिंह जी, ज़िला संघचालक के शुभ हाथों से सम्पन्न हुआ। **ii) बलानी खेड़ा खण्ड के गाँव पालावास** में सिलाई केन्द्र का 12 सितम्बर को श्री प्रहलादराय प्रान्त उपाध्यक्ष के सहयोग से आरम्भ किया गया। केन्द्र में 15 बहनों ने प्रथम दिन प्रवेश लिया। इस अवसर पर सर्वश्री रामनिवास, अनिल ज़िला सचिव, केन्द्रमणी, लीला जी उपस्थित रहे।

4. जल व्यवस्था : नगर की सेवा बस्ती सींगीकाट कालोनी में 18 अगस्त को कालोनी की माँग पर एक दानदाता ने गुप्तदान करके बस्ती की प्यास बुझाने के लिए सेवा भारती के माध्यम से हैण्ड पम्प लगवाया। 50 घरों की 350 से अधिक आबादी को इस कार्य से लाभ मिलेगा।

5. सिलाई प्रकल्प का उद्घाटन :- केशव धाम के समीप स्थित सींगीकाट कालोनी में हाईकेम क्लब की सचिव बहन रूंगटा जी ने रिबन काट कर उद्घाटन किया। बच्चों ने देशभक्ति व लोकगीत गाकर स्वागत किया। रूंगटा जी ने कहा कि इस प्रकल्प के आरम्भ होने से समाज के बच्चों में स्वावलम्बन का भाव विकसित होगा। देश प्रेम की भावना से राष्ट्र की उन्नति होगी।

6. आचार्य प्रशिक्षण शिविर : 18 से 20 सितम्बर, 2015 को भिवानी-हिसार विभागों का फतेहाबाद में आचार्य प्रशिक्षण शिविर का आयोजन हुआ। इस शिविर में कुल 77 तथा भिवानी की 8 बहनों ने भाग लिया।

7. जन्म दिवस : 2 सितम्बर को सुरेश बंसल ज़िला उप-प्रधान की माता इन्द्रा देवी का जन्म दिवस सेवा बस्ती में केशव धाम के समीप सींगीकाट कालोनी में मनाया। इस अवसर पर परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त बस्ती के माताएँ, बुजुर्ग उपस्थित रहे। फल वितरण प्रसाद रूप में किया गया। 8 प्रकल्पों के 100 बच्चों ने भाग लिया। **-प्रहलादराय सोलंकी,** प्रांत उपाध्यक्ष

धोबी की ईमानदारी : बात संवत् 2063 की है। हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी गुजरात से मानव सेठ बसन्त पंचमी पर आयोजित पंच दिवसीय फूलडोल-महोत्सव में भाग लेने के लिए शाहपुरा (भीलवाड़ा) राजस्थान आये थे। यहाँ रामस्नेही-सम्प्रदाय का विश्वविख्यात रामद्वारा। उक्त सेठ के नौकर ने जल्दबाज़ी में सेठ जी का कुर्ता - पाजामा, धोने एवं इस्त्री करने के लिए ड्राईक्लीनर्स को दे दिये, किंतु कुर्ते से सोने के बटन एवं चैन निकालना भूल गया। अगले दिन प्रातः सेठ ने नौकर से कुर्ते में लगाने के लिए अपने बटन एवं चेन माँगी तो नौकर को याद आया कि वह तो ड्राईक्लीनर्स के यहाँ कुर्ते के संग दे आया। सेठ जी को इसके विषय में बताया और तुरंत ड्राईक्लीनर्स के यहाँ जाने की अनुमति माँगी, किंतु सेठ जी ने अपने विश्वस्त नौकर को धैर्य बँधाते हुए कहा कि -

सूं ध्वै खरी कमाई ना वेला तो मिल जायेगा।
अटला माटे भागवाँ नीं ज़रूरत ना है।।

यह चेन-बटन तकरीबन एक तोला (12 ग्राम) सोने से निर्मित थे, जिनकी वर्तमान लागत लगभग 30000 रुपये (तीस हजार रुपये) है। दूसरे दिन

ही सायंकाल में ड्राईक्लीनर्स वाले धोबी ने कपड़ों सहित सेठ जी के ठहराव वाले स्थान पर आकर चेन एवं बटन सेठ जी को सुपुर्द करते हुए कहा कि भविष्य में कपड़ों की अच्छी तरह छानबीनकर ही प्रेषित करने की कृपा करें, ताकि ऐसी भूल नहीं हो। सेठ जी धोबी की ईमानदारी से अभिभूत हो गये एवं प्रसन्न होकर उसे 500 (पाँच सौ) रुपये ईमानदारी के पुरसकार के रूप में देने लगे, किंतु धोबी ने कहा कि मुझे तो आप सेवा का अवसर इसी तरह प्रदान करते रहें, बस! इतना ही हमारे लिए पर्याप्त है। यह रुपया पुरस्कार नहीं चाहिये। आज भी वे सेठ जी हमारे सम्माननीय ग्राहक हैं। उक्त ड्राईक्लीनर्स मेरे पिताश्री हैं, जिनके ईमानदारीयुक्त जीवन की छाया में पोषित मैं राजकीय सेवा के उच्च पद पर कार्यरत हूँ। -

रीता धोबी

शरद् ऋतु में प्रकृति का अद्भुत वरदान शहद

भारतीय संस्कृति में नामकरण हो या मरणोत्तर संस्कार, शहद की उपयोगिता हमेशा रहती है। यह एक औषधि और पौष्टिक पदार्थ के रूप में शहद के उपयोग के लिए शीतकाल अधिक उपयुक्त एवं हितकर समय होता है। एक किलोग्राम शहद में 10 किलोग्राम दूध के बराबर पोषक तत्त्व होते हैं। शहद मात्र पांच मिनट में पचकर खून में मिलकर (ऊर्जा) देता है। यह एक पचा पचाया भोजन है। आयुर्वेद ने शहद के स्वास्थ्य रक्षण एवं शरीर पोषण की दृष्टि से दैनिक जीवन में उपयोगिता के लिए भाव प्रकाश निघण्टु में लिखा है :

'शहद शीतल, हलका, मधुर, रूखा, ग्राही, विलेखन, नेत्रों के लिए हितकारी, अग्निदीपन करने वाला, स्वर को उत्तम करने वाला, व्रण शोधक, रोपण, सुकुमारता करने वाला, सूक्ष्म स्रोतों को शुद्ध करने वाला, कसैले रस वाला, आल्हाद (हर्षित) करने वाला, प्रसादजनक, वर्ण को उज्ज्वल करने वाला, बुद्धिकारक, वृष्य, विशद, रुचिकारक और मेद, तृषा, वमन, श्वास, हिचकी, अतिसार, मलबन्ध, कोढ़, बवासीर, खांसी, पित्त, रक्तविकार, कफ, प्रमेह, ग्लानि, कृमि, दाह, क्षत और क्षय - इनको नष्ट करने वाला है। यह योगवाही और तनिक वातकारक है।'

मधु-मक्खियों द्वारा फूलों के पराग (मकरन्द) से प्राप्त कर अपने छत्तों के खानों में इकट्ठा किया जाता है। शुरू में यह पानी की तरह पतला और फीका रहता है, पर छत्ते में गाढ़ा और मीठा हो जाता है। मधुमक्खी के इस छत्ते से शहद ही नहीं मोम (Wax) भी प्राप्त होता है। आजकल शुद्ध शहद

मिलना कठिन है, क्योंकि ज़्यादातर चीनी की चाश्नी मिला हुआ शहद ही बाज़ार में मिलता है। जो दुकानदार अपनी दुकान की प्रतिष्ठा व साख बनाये रखना अपनी मान-मर्यादा की बात मानते हैं वे ही शुद्ध शहद बेचते हैं। शुद्ध और अशुद्ध की जाँच करने के कुछ उपाय भी हैं:

1- इसका सर्वाधिक प्रचलित उपाय यह है कि काँच के एक साफ़ गिलास में पानी भर कर शहद की बूँद टपकाएं। यदि बूँद सीधी जा कर तली में बैठ जाए तो शहद शुद्ध है और यदि पानी में फैल जाए, बिना हिलाए घुल जाए तो मिलावट युक्त है। 2- शहद की एक बूँद प्लेट या लकड़ी पर टपका लें, दियासलाई जला कर इससे स्पर्श करने पर शहद जलने लगे तो शुद्ध, न जले तो अशुद्ध है। 3- शुद्ध शहद सुगन्धित होता है, ठण्ड में जम जाता है और गर्मी में पिघल जाता है। शुद्ध शहद का दाग़ नहीं लगता, मिलावटी हो तो दाग़ लग जाता है। शीशी से प्लेट में धारबन्द शहद टपकाने पर प्लेट पर साँप की कुण्डली जैसी बन जाती है तो शहद शुद्ध है, अशुद्ध शहद प्लेट में गिरते ही फैल जाता है। शुद्ध शहद में मक्खी गिरकर फंसती नहीं, फड़फड़ा कर निकल कर उड़ जाती है, मिलावटी शहद में फंसकर रह जाती है। शुद्ध शहद आँखों में लगाने पर थोड़ी सी जलन होगी पर चिपचिपाहट नहीं होगी और थोड़ी देर बाद ठण्डक का अनुभव होगा। शुद्ध शहद देखने में पारदर्शी होगा और कुत्ते के सामने रखने पर वह सूँघ कर छोड़ देगा, खाएगा नहीं। शहद नया और पुराना दो प्रकार का होता है। नया शहद गुण में पौष्टिक, दस्तावर और तनिक कफ नाशक होता है। एक वर्ष तक रखे रहने पर शहद और गुड़ पुराने माने जाते हैं तथा नये की अपेक्षा अधिक गुणकारी हो जाते हैं।

उपयोग - शहद के कई प्रकार से प्रयोग करने के कुछ उपयोगी नियम हैं जिनका पालन करते हुए ही शहद का उपयोग करना हितकारी होता है।

1. सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नियम है कि शहद को गरम करके, गरम पदार्थ के साथ, ग्रीष्म ऋतु में, गरम शरीर में और गरम वातावरण में सेवन नहीं करना चाहिए। आयुर्वेद ने चेतावनी दी है -

उष्णैर्विरूध्यते सर्व विषन्वयतया मधु, उष्णार्त्तमुष्णैरूष्णै वा यन्निहन्ति यथा विषम्। तत्सौकुमार्याच्च तथैव शैल्यान्नानौषधीनां रस सम्भवाच्च, उष्णैविरूध्येत विशेषतश्च तथाऽन्तरीक्षेण जलेन चापि। - सुश्रुत संहिता

अपनी उत्पत्ति में विषसंसर्गजन्य होने से शहद गरम अवस्था के विरुद्ध पड़ता है, जैसे अग्नि व सूर्य के ताप से पीड़ित मनुष्य को, उष्ण द्रव्यों के साथ

उष्ण समय सेवन करने से विष की तरह मारक प्रभाव करता है। शहद कोमल, शीतल और अनेक प्रकार के फूलों के रस से उत्पन्न होने के कारण गरम द्रव्यों के साथ विरुद्ध पड़ता है तथा विशेषकर वर्षा के जल के साथ भी विरुद्ध पड़ता है। **'उष्णमुष्णार्तमुष्मे च युक्त चौष्णौर्निहन्ति तत्'** (अष्टाङ्ग हृदय) के अनुसार गरम किया हुआ, गर्मी से पीड़ित अवस्था में, गर्म समय और गरम आहार के साथ शहद का सेवन विष के समान हानिकारक होता है। **'मधु चोष्णामुष्णार्त्तस्य च मधु मरणाय'** (चरक) के अनुसार भी गरम किया हुआ और गर्मी से पीड़ित अवस्था में शहद का सेवन करना अत्यन्त हानिकारक होता है। हम इसका दृढ़ता से विरोध करते हैं। आयुर्वेद की चेतावनी को ध्यान में रखकर शहद का सेवन गरम पानी, गरम दूध, गरम ऋतु और गरम वातावरण में कदापि न करें। पेट साफ करने और कब्ज़ दूर करने के लिए गरम पानी में शहद और नींबू का रस डाल कर प्रातः शौच से पहले पीने का विवरण कुछ पुस्तकों में मिलता है। हमारा गुरू और मार्गदर्शक आयुर्वेद शास्त्र है, उसने युक्ति पूर्वक इस मत को प्रमाणित भी किया है, कि गर्म पदार्थ के साथ शहद का सेवन करना हानिकारक होता है। **'आमे सोष्मा क्रिया कार्या, सा मध्वामे विरुद्धयते'** के अनुसार शहद के साथ उष्णता का मेल नहीं है, क्योंकि शहद नाना प्रकार के फूलों से संचित होने के कारण इसमें विषैले पुष्पों का योग भी सम्भव है फिर शहद बनाने वाली मक्खियाँ स्वयं ज़हरीली होती हैं अतः
मधु में विष का संसर्ग होता है और उष्णता से विष का बल बढ़ता है। विष में उष्णता का निषेध किया गया है एक दूसरा पक्ष और भी है कि प्रकृति से शहद शीतल होता है, अतः उष्ण पदार्थ के साथ इसका मेल होना वीर्य विरूद्ध होता है अतः हानिकारक हो जाता है। इसलिए ध्यान रखें कि शहद का सेवन ठण्डे जल या ठण्डे दूध के साथ जैसी ज़रूरत हो करना चाहिए।

2. **'मधुसर्विषी समघृते'** के अनुसार शहद और घी, दोनों समान मात्रा में मिलाकर सेवन करना विष के समान अत्यन्त हानिकारक होता है। यदि घी व शहद साथ लेने की ज़रूरत पड़े तो घी का एक भाग और शहद घी से तिगुनी या चौगुनी मात्रा में लें, इस अनुपात में मिलाये जाने पर यह हानिकारक नहीं, बल्कि बहुत पौष्टिक और बलवीर्यवर्द्धक हो जाता है। जो व्यक्ति मुलहठी के चूर्ण को घी तथा शहद, (विषम मात्रा में) के साथ मिलाकर खाता है और ऊपर से मिश्री मिलाकर मीठा दूध पीता है उसका शरीर बलवीर्य से परिपूर्ण होता है।

3. अकेला सिर्फ कोरा शहद खाना उचित नहीं। इसे किसी पदार्थ या पेय के साथ ही सेवन करना चाहिए। इसके अलावा शक्कर, मिश्री, खांडसारी, गुड़, तैल, घी, पक्का कटहल, मछली, अण्डा, मांस आदि में से किसी भी एक के साथ शहद खाना वर्जित है। सिर्फ शहद और उपर्युक्त पदार्थों में से किसी भी एक पदार्थ का एक साथ सेवन हानिकारक होता है। किसी के साथ संयोग विरुद्ध, किसी के साथ मात्रा विरुद्ध, किसी के साथ प्रकृति विरुद्ध होना आदि अनेक तरह की विरुद्धताएँ होती हैं, जिससे ये संयोग हानिकारक होते हैं।

4. एक गिलास ठण्डे दूध में बिना शक्कर या मिश्री मिलाये सिर्फ शहद दो-तीन चम्मच डालकर रात को सोने से आधा घण्टे पहले पीने से शरीर का दुबलापन दूर होता है और शरीर पर मोटापा चढ़ता है। लगातार दो माह तक सेवन करना चाहिए। इस प्रयोग से त्वचा का रंग साफ होता है, चेहरे पर कान्ति और लालिमा आती है। शीतकाल में दुबले-पतले व्यक्ति को यह प्रयोग अवश्य करना चाहिए। दूध व शहद पीकर दन्तमंजन या ब्रश करके मुँह साफ कर लेना चाहिए।

5. जो मोटापा कम करना चाहें, उन्हें शहद को दूध के साथ सेवन नहीं करना चाहिए बल्कि ठण्डे पानी के साथ करना चाहिए। **'प्रातर्मधुयुतं वारिसेवित स्थौल्याशनम्'** के अनुसार प्रातः काल एक गिलास ताज़े जल में 2-3 चम्मच शहद घोलकर, शौच जाने से पहले पीने से धीरे-धीरे शरीर की चर्बी कम होने लगती है, इसमें नींबू न निचोड़ें, सिर्फ शहद व पानी का ही सेवन करें। **'शिशिराम्बु पिबन्मधु प्रयुक्त गणनाथोऽपि भवेन्त्किलास्थि शेषः'**- प्रातःकाल ठण्डे पानी में शहद घोल कर नियमपूर्वक यदि गणेश जी (भारी शरीर वाले) भी पीएं तो वे भी हड्डियों का ढाँचा रह जाएँगे अर्थात् दुबले हो जाएँगे। जो युवक-युवतियाँ अपना मोटापा दूर करना चाहें तो यह प्रयोग लगातार दो माह तक करें।

6. शहद उचित मात्रा व विधि से सेवन करना दिमाग़ी काम करने वाले विद्यार्थी, वकील, डॉक्टर, व्यापारी आदि गर्भवती स्त्रियों के लिए, शिशुओं एवं वृद्धों के लिए, उपवास के समय, अच्छी सर्दी के दिनों में बहुत लाभप्रद होता है। शहद भोजन के साथ भी अचार-चटनी तथा जेली की तरह फलों के साथ भी खाया जा सकता है।

7. शहद भारी मात्रा में और लगातार महीनों तक सेवन नहीं करना चाहिए,

अति के कारण आजीर्ण हो जाती है और इस आजीर्ण व्याधि से बढ़कर अन्य कोई भी भयंकर और कष्टकारी नहीं होता, क्योंकि मधु के अति सेवन से उत्पन्न आजीर्ण उपक्रम में विरुद्ध पड़ता है, यथा उष्ण चिकित्सा मधुजन्य आजीर्ण में विरुद्ध पड़ती है, क्योंकि मधु के लिए शीतल उपचार अनुकूल और आवश्यक होता है, अतः मधु के अति सेवन से उत्पन्न आजीर्ण अति भयंकर तथा विष के समान शीघ्र मारक होता है। अतः यह ख्याल रखना ज़रूरी है, कि शहद के गुणों से प्रभावित होकर इसका अति मात्रा में और लगातार महीनों तक सेवन नहीं करना चाहिए। अपनी पाचन शक्ति के अनुकूल मात्रा में अधिक से अधिक 60 दिन सेवन करके कुछ दिनों तक सेवन करना बन्द कर दें, फिर 1-2 माह बाद शुरू कर दें। प्रतिदिन 1-2 चम्मच शहद लेना औसत और निरापद मात्रा है। शहद में यह विशेष गुण है कि यह जिस पदार्थ के साथ मिलता है उसी पदार्थ के गुण ग्रहण करके उन गुणों की वृद्धि करता है, इसलिए इसे 'योगवाही' कहा जाता है और औषधि सेवन हेतू इसे अनुपान के रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रारम्भ में इसको कम मात्रा में लेना चाहिए। शिशु को 4-5 बूँद, किशोर बच्चों को आधा चम्मच छोटा और बड़ों को एक चम्मच मात्रा से दिन में एक बार लेना शुरू करना चाहिए। एक सप्ताह बाद इसी मात्रा को सुबह शाम लेना शुरू कर दें। तीसरे सप्ताह में सुबह, दोपहर, शाम याने तीन बार लेने लगें। चौथे सप्ताह चार बार लें। मात्रा वही रखें और देखें कि हज़म हो रहा है, पतले दस्त नहीं हो रहे हैं, पेट में मरोड़ या दर्द नहीं है, प्यास ज़्यादा नहीं लगती, तो थोड़ी मात्रा बढ़ा सकते हैं।

औषधि के रूप में शहद :- शहद का उपयोग औषधि के रूप में भी किया जाता है। यहाँ शहद के कुछ विशिष्ट एवं गुणकारी प्रयोग दिये जा रहे हैं।

गुणवत्ता की दृष्टि से अलग-अलग स्थानों एवं स्रोतों से प्राप्त होने वाले शहद के गुण भी अलग-अलग होते हैं। देश, काल और परिस्थिति का प्रभाव करना स्वभाविक है। इस दृष्टि से कश्मीर और हिमालय की घाटियों से प्राप्त होने वाला शहद सर्वश्रेष्ठ होता है। वहाँ हज़ार तरह के फूल होते हैं, हरियाली होती है, भयंकर गर्मी नहीं पड़ती और नाना प्रकार के वृक्ष होते हैं। कमल के फूलों से मधुमक्खियाँ रस लेती हैं और वहीं छत्ते बनाकर शहद बनाती हैं, इस शहद को 'पद्म मधु' कहते हैं। यह कश्मीर की झीलों में लगने वाले कमल के फूलों से उपलब्धा होता है और 'पद्म मधु' के नाम से सुविख्यात है। यह शहद कश्मीर के अलावा और किसी प्रदेश में पैदा नहीं होता। नेत्रों के लिए यह

शहद कलियुग में अमृत के सामान है। ग्रीष्म और वर्षाकाल में संग्रह किया हुआ शहद उत्तम नहीं होता, केवल शीतकाल में मधुमक्खियों के छत्तों से प्राप्त किया हुआ शहद शुद्ध, अत्यन्त गुणकारी और श्रेष्ठ होता है।

शहद का सेवन करने से मस्तिष्क को ताज़गी और शक्ति प्राप्त होती है।

नेत्रों पर प्रभाव :- कश्मीर का 'पद्म मधु' मिल सके तो उसे प्रतिदिन एक बार नेत्रों में काजल की तरह लगाने से नेत्रों के सब विकार नष्ट होते हैं, नेत्र स्वच्छ, चमकीले और रसीले बने रहते हैं। नेत्र ज्योति अच्छी बनी रहती है। शहद खाने से भी यही लाभ होते हैं।

त्वचा पर प्रभाव :- त्वचा के लिए शहद अत्युत्तम है। इसके सेवन से त्वचा स्वस्थ और चमकीली होती है, जिससे चेहरे की त्वचा भी कान्तिपूर्ण और साफ रहती है। फोड़े फुंसी पर शहद की पट्टी लगाने से घाव जल्दी भरते हैं। यह रक्त और त्वचा के विकार नष्ट कर उन्हें शुद्ध करता है। शहद कीटाणुनाशक और सड़न को रोकने वाला होता है।

आंतों पर प्रभाव :- शहद आंतों की बिगड़ी हुई दशा को सुधारता है, आंतों में जमे विजातीय द्रव्यों को दूर करता है। कृमियों को नष्ट करता है, इसलिए शहद का उपयोग करना पुराने रोग और अतिसार तथा पुरानी कब्ज़ियत के लिए बहुत लाभप्रद रहता है। शहद को पानी में घोल कर एनीमा लेने से और भी जल्दी लाभ होता है। हमारे अमाशय और पक्काशय पर भी शहद का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। छाती में जमे कफ़ (बलग़म) को शहद आसानी से बाहर निकाल देता है, जिससे खांसी व दमा रोगी को बड़ी राहत मिलती है। क्षय के रोगी के लिए तो शहद अमृत का काम करता है।

शहद सेवन का प्रभाव पुरुष एवं स्त्री के यौनांग पर बहुत अच्छा होता है।

बलवीर्यवर्द्धक योग :- एक बादाम का दाना सुबह पानी में गला दें। रात को इसे साफ़ पत्थर पर पानी के साथ चन्दन की तरह घिस कर लेप कटोरी में उतार लें। इसमें एक चम्मच शहद मिला कर एक गिलास फीके (बिना शक्कर) ठण्डे दूध में डाल कर घोल लें। सोने से आधा घण्टे पहले इसे धीरे-धीरे घूंट-घूट करके (Eat your liquids) के अनुसार मुँह में चबाते हुए निगलें। बाद में दन्त मंजन आदि करके मुँह साफ़ कर लें। बल पौरुष, दिमाग़ी ताकत और शरीर की पुष्टि व सुडौलता के लिए यह शहद को सेवन करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है। 'हाथ कंगन को आरसी क्या' इस शीतकाल में दो माह नियमित रूप से यह प्रयोग करके स्वयं आज़मा कर देख लें।

कफ़ प्रकोप नाशक योग :- यूँ तो सिर्फ शहद चाटने से ही छोटी मोटी खाँसी में आराम हो जाता है, फिर भी आधा चम्मच अदरक का रस और आधा

चम्मच शहद चाटने से खाँसी में आराम होता है। प्याज़ का रस और शहद समान मात्रा में मिलाकर चाटने से भी कफ निकल जाता है और आराम होता है। **शहद मधुमेह व प्रमेह के रोगियों के लिए वर्जित नहीं है अतः वे मज़े से शहद का सेवन कर सकते हैं।** **- साभार : निरोगधाम**

शाहजहाँ मुहब्बत का मसीहा?

कहते हैं कि शाहजहाँ अपने समय का बड़ा बहादुर और पराक्रमी व्यक्ति था। उसने राजपाठ बढ़ाने में कोई कमी न रहने दी। जिन प्रदेशों को जीता, उनकी प्रजा को पूरी तरह से लूटा। उसने अपने भाइयों को कत्ल करने से लेकर बाप को कैद करने तक का कोई काम ऐसा नहीं छोड़ा जिस पर उसकी चतुरता और निर्दयता की छाप न पड़ी हो। संग्रहीत पूँजी का क्या किया जाए ? इसके लिए उसके उपभोग में खुद और बीबी तक को शामिल रखा। जीते जी बैठने के लिए बहुमूल्य संपदा से बना हुआ तख्त-ए-ताऊस बनवाया। मरने के बाद शानदार कब्र के रूप में ताजमहल खड़ा किया। ये दोनों ही चीजें बेशकीमती बनाई गईं, ताकि उससे बढ़कर और किसी की प्रशंसा न हो सके। तख्त-ए-ताऊस (मोरपंख जैसा सिंहासन) उसने बनाते समय सोचा कि संसार में और कोई बहुमूल्य चीज नहीं रहने पाए। ग्वालियर नरेश से उसने कोहनूर हीरा छीन लिया। उसमें सोने और जवाहरातों की भरमार थी। मीनाकारी की जगह बहुमूल्य रंग-बिरंगे रत्न लगाए। उसके समूचे खंभे पन्ने के बने हुए थे। उस समय उसकी कीमत बारह करोड़ आँकी गई थी जो आज के हिसाब से सोचो कितने करोड़ होगी? यह कुछ ही दिन उसके बेटे औरंगजेब के पास रहा। बाद में मोहम्मद शाह के कब्ज़े में चला गया। ईरान के बादशाह नादिरशाह ने काबुल जीतने के बाद भारत पर चढ़ाई कर दी और मोहम्मदशाह को परास्त करके जो विपुल संपत्ति नादिरशाह ने लूटी, उसमें तख्त-ए-ताऊस भी शामिल था। इसे लेकर वह वापस लौट रहा था कि कुर्दों ने उसकी हत्या कर दी और सारी संपत्ति लुटेरों ने आपस में बाँट ली। तखत-ए-ताऊस के टुकड़े करके आपस में उन लोगों ने बाँट लिए। कुछ दिन बाद नादिरशाह के लड़कों ने लुटेरों को पकड़ा और उनसे सारी संपत्ति उगलवा ली, जिसमें तख्त-ए-ताऊस के टुकड़े भी शामिल थे। उसे तोड़-जोड़कर पहले जैसा बना लिया गया। यद्यपि आधे रत्न उसमें से गायब हो गए थे। अठारहवीं सदी में वह तख्त-ए-ताऊस अंग्रेजों के हाथ पड़ा। उसे पूर्ण गोपनीयता के साथ लंका के त्रिंकोमाली बंदरगाह से जलयान में चढ़ाकर इंग्लैंड भेजा गया। 1 अगस्त सन् 1882 को पूर्वी अफ्रीका में समुद्री चट्टान से टकराकर वह जहाज डूब गया। साथ ही तख्त-ए-ताऊस और उसके साथ भरा हुआ रत्न भंडार भी डूब गया। इसके

बाद उसे समुद्र तल से निकालने के बहुतेरे प्रयत्न होते रहे, पर उसमें से यदाकदा रत्न ही हाथ लगते रहे, जिससे डूबने के क्षेत्र का पता चला परन्तु संपत्ति हाथ न लगी।

महत्त्वपूर्ण व क्रूरतम बात यह थी कि इसे तथा ताजमहल को बनाने वाले कारीगरों के हाथ बादशाह द्वारा कटवा दिए गए, ताकि वे कहीं दूसरा वैसा ही नकली, और कहीं बनाकर खड़ा न कर दें। इसमें उससे भी बड़ा राज्य सिंहासन होने से उसकी हेठी होती थी। इसमें जो पन्ना लगा था, उसे बाज़ार से नहीं खरीदा गया था। उसे प्राप्त करने के लिए अनेक सामंतों और धनवंतों के सिर उतारे गए थे। तख्त-ए-ताऊस समेत शाहजहाँ की दौलत सहित अन्य इमारतों का हिसाब लगाया जाए तो प्रतीत होता है कि वह अपने ज़माने का 'धन-कुबेर' था। इसे संग्रह करने में उसने कितनी ही लड़ाइयों की योजनाएँ बनाईं और जुल्म किए पर अंत उसका भी वैसा ही हुआ, जैसा कि अपने पिता का उसने किया था। किए हुए कर्मों का हिसाब तो देना ही पड़ता है।

मनुष्य के लालच और अहंकार को देखा जाए तो उसने आदमी की कितनी बड़ी प्रतिभा का नाश किया और कितनों को मौत के घाट उतार कर, दर-दर का भिखारी बनाया। बहादुरी और प्रतिभा के स्थान पर आदमी के पास नेकनीयती होती तो उससे कितनों की कितनी भलाई होती ?

'हार्ट अटैक का उपचार'

आधुनिक जीवन-शैली की भाग-दौड़ और मानसिक तनाव के कारण हृदयाघात (हार्ट अटैक) आम होता जा रहा है। यह एक सद्यः प्राणघातक रोग है, रक्त से धमनियों में ब्लॉकेज हो जाता है। ऐसे में यह सहज सुलभ उपाय 99 प्रतिशत ब्लॉकेज को भी हटा देता है, इसका मुख्य घटक है पीपल का पत्ता। औषधि-निर्माण और प्रयोगविधि इस प्रकार है-पीपल के 15 पत्ते लें जो कोमल एवं भली प्रकार से विकसित हों। प्रत्येक का ऊपर एवं नीचे का कुछ भाग कैंची से काटकर अलग कर दें। पत्ते का बीच का भाग पानी से साफ़ कर लें। इन्हें एक गिलास (1/2 कि ग्रा) पानी में धीमी आँच पर पकने दें। जब पानी उबलकर एक तिहाई रह जाए, तब ठण्डा होने पर साफ़ कपड़े से छान लें और उसे ठण्डे स्थान पर रख दें, दवा तैयार। इस काढ़े की तीन खुराकें बनाकर प्रत्येक तीन घण्टे बाद प्रातः, दोपहर, सांय लें। हार्ट अटैक के बाद कुछ समय हो जाने के पश्चात् लगातार पन्द्रह दिन तक इसे लेने से हृदय पुनः स्वस्थ हो जाता है और फिर दिल का दौरा पड़ने की सम्भावना नहीं रहती। पीपल के पत्ते में दिल को बल और शान्ति देने की अद्‌भुत क्षमता है। पीपल के पत्ते के काढ़े की खुराक लेने से पहले पेट एकदम खाली नहीं होना चाहिये,

बल्कि सुपाच्य एवं हल्का नाश्ता करने के बाद ही लें।

प्रयोगकाल में तली चीज़ें, चावल, मांस, मछली, अण्डे, नमक, शराब, धूम्रपान, चिकनाई का प्रयोग बन्द कर दें। अनार, पपीता, आँवला, बथुआ, लहसुन, मेथी दाना, सेब का मुरब्बा, मौसमी, रात को भिगोये काले चने, किशमिश, गुग्गल, गाय के दूध की दही, छाछ आदि लें। हृदय आघात की सर्वसुलभ औषधि होने के नाते ही सम्भवतः भगवान ने पीपल के पत्ते की आकृति हृदय की तरह बनाई है।

- भगवान दास (कल्याण)

11वीं किस्त आपात्काल में एक स्वयंसेवक का संघर्ष

आपात्काल की समाप्ति के पश्चात् मा. श्री प्रेमचंद जी गोयल ने अनेक बार मुझे कहा था, कि तुम अपने आपात्काल के अनुभव लिखकर भेजो। परन्तु मैंने उन्हें कहा, कि हमने एक स्वयंसेवक के नाते जो ठीक समझा और जो अधिकारियों का आदेश हुआ, वही करने का प्रयत्न किया। 'सेवा दर्शन' पत्रिका के पाठकों से बार-बार मैं कहता रहा हूँ कि न मैं विद्वान हूँ, न बुद्धिमान, न चिन्तक न लेखक, न कवि हूँ, मैं एक साधारण सा संघ का स्वयंसेवक हूँ, इसलिए मेरे लेखों में न तो कोई विद्ववतापूर्ण विवेचन मिलेगा और न ही कोई मौलिक नवीन ज्ञान की जानकारी आपको आशा करनी चाहिए। जो कुछ भी मैं लिखता हूँ वह सब कुछ अपने देश के राष्ट्रीय जीवन में आए हज़ारों लाखों वर्षों के एतिहासिक सत्-पुरुषों से प्राप्त प्रेरणा तथा मेरे पिछले 69 वर्षों से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनेक तपस्वी अधिकारियों के चरणों में बैठकर जो सुना-समझा उसका परिणाम है। वैसे तो हम हिन्दुओं के लिए कुछ भी नवीन नहीं, हमारे लिए केवल परम्पिता परमात्मा ही नित्य नवीन और चिरपुरातन है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता का ज्ञान अर्जुन को देते हुए कहा था- हे अर्जुन! एवं परम्परा प्राप्तम्' अर्थात् यह ज्ञान जो मैं तुझे दे रहा हूँ, वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी बहता चला आ रहा है, मैं ही पहली बार तुझे बता रहा हूँ ऐसी बात नहीं है। इसलिए कोई अच्छी बात प्रेरणादायक समझ में आए तो वह उनकी कृपा का प्रसाद है और कोई कमी दिखाई दे तो वह मेरी अयोग्यता के कारण है। बाल्यकाल से ही में तृतीय श्रेणी में पास होने वाला विद्यार्थी रहा हूँ। जब कोई बन्धु मुझसे पूछता है कि मैं कहाँ तक पढ़ा हूँ! तो मैं मज़ाक में टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में कहता हूँ- I did my graduation very-very-very gradually, that's why I am a real graduate.

हमारी सेवा भारती के प्रदेश कार्यालय प्रमुख श्री ओमप्रकाश जी वर्मा तथा अन्य अनेक सुद्धि कार्यकर्ताओं के बार-बार अनुरोध पर मुझे अपने आपात्काल के अनुभवों को लेखनीबद्ध करना पड़ा है। पिछले अंक में 1975

में 29,30,31 दिसम्बर के कांग्रेस पार्टी के मोहाली, पंजाब में कामागाटामारू महाधि ावेशन में सत्याग्रह का विवरण छापा था। उस अधिवेशन के पश्चात मैंने श्रीमान् प्रेमचंद जी गोयल से अनुरोध किया कि अब भूमिगत गतिविधियों से मैं थक चुका हूँ, मुझे जेल जाने की अनुमति दी जाये। वास्तव में भूमिगत गतिविधियों को जारी रखने में सबसे बड़ी बाधा मेरे लिए धन जुटाने की थी, जिस कारण मेरा बाहर रहकर कार्य करते रहना कठिना था, इसलिए उन्होंने कहा तुम्हें सूचना मिल जायेगी। तीन-चार दिन बाद उस समय के जनसंघ के प्रदेश संघटन मंत्री श्री पुरुषोत्तम जी देशमुख (अब स्वर्गीय) करनाल के रांवर रोड पर बैठक (पिछले लेखों में उल्लेख आ चुका है) में सूचना दी, कि अपना जत्था तैयार करके हरियाणा विधानसभा का अधि ावेशन, जो 13 जनवरी 1976 को शुरू होगा, वहाँ चण्डीगढ़ में तुम्हें सत्याग्रह करना है। हरियाणा विधानसभा पर सत्याग्रह का विवरण अगले अंक में जारी.....।

'कहाँ गये वे लोग ?'

दादी माँ बताती थी, जब हम रोटी बनाते थे पहली रोटी गाय की निकालते थे, दूसरी रोटी (हन्दा) पण्डतानी के लिए निकालते थे, आखिरी रोटी कुत्ते की बनाते थे। हर प्रातः एक साण्ड आ जाता दरवाज़े पर, गुड़ की एक डली उसे देते थे। कबूतर का चुग्गा, कीड़ियों के लिए आटा, ग्यारस, अमावस, पूर्णिमा पर डकौत के लिए तेल, काली कुतिया के ब्याने पर तेल गुड़ का सीरा बनाते थे। उस समय विलासता के नाम पर छत में एक हाथ से खींचने वाला पंखा और सब के लिए एक साईकल होता था और घर में सुख-शान्ति बरसती थी। आज हर प्रकार के आध ुनिक विलासता के सामान से भरे घर में सिवाये लड़ने-झगड़ने वाली कर्कश आवाज़ के कुछ नहीं निकलता।

मकान चाहे कच्चे थे, लेकिन रिश्ते सारे सच्चे थे। हम चारपाई पर बैठते थे, सब आस-पास ही रहते थे। सोफ़े, बैड और मोबाइल आ गये, दूरियाँ हमारी बढ़ा गए। छत पर खुले में सोते थे, कहानियाँ गप-शप होते थे। आँगन में वृक्ष झूमते थे, एक-दूसरे का सुख-दुःख बांटते थे। दरवाज़ा खुला रहता था, राही भी आकर बैठता था। छत पर कव्वे काँवते थे, महमान भी आते-जावते थे। एक ही साईकल पास थी, फिर भी मेल-मुलाकात थी। सब मिलकर रिश्ते निभाते थे, रूठे हुओं को मनाते थे। चाहे धन दौलत कम था, परन्तु माथे पर कोई न गम था। अब शायद बहुत कुछ पा लिया, पर लगता है बहुत कुछ गंवा दिया। तब मकान चाहे कच्चे थे, परन्तु रिश्ते सारे सच्चे थे।

-अज्ञात

सेवा दर्शन से प्रभु पूजा द्विमासिक पत्रिका, स्वामित्व- सेवा भारती (पंजी.) हरियाणा।
मुद्रक : जुगल बठला, मै. बठला प्रिंटर्ज़, विवेकानन्द विद्यालय परिसर, करनाल।
सम्पादक व प्रकाशक : ओम प्रकाश अत्रेजा, ई. 230, अर्जुन गेट, करनाल-132001